लाड़का हो

उन लाड़का शहीदों के नाम
समर्पित
जिनके बलिदान के फलस्वरूप
हो जाति की पहचान जीवित है।

प्रस्तुति : चन्द्रभूषण देवगम

लाड़का हो

अज्ञात प्रदेश :

हो जाति की पहचान कभी "लाड़का हो" अर्थात पराक्रमी योद्धाओं के नाम से होती थी। दोस्तों और दुश्मनों ने इस जाति को "विलक्षण", "असाधारण" आदि विशेषणों से अलंकृत किया था। किसी को ठीक पता नहीं कि यह जाति वर्तमान बिहार राज्य के दक्षिणी सीमावर्ती सिंहभूमि जिले में और साथ लगते उड़ीसा राज्य के केयोंझर, मयूरभंज आदि इलाकों में किस युग से बसी हुई है।

केप्टेन टी.एस. विलकिनसन और मेजर रफसेज़ की सरकारी रिपोर्टों से पता चलता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के पहले तक यह इलाका स्वाधीन और बाहरी हस्तक्षेप से लगभग अछूता था। इन अंग्रेज अधिकारियों ने अपनी रिपोर्टों में इस बात का ज़िक्र किया है कि यह क्षेत्र "टेरा इनकागनिटा" अर्थात "अज्ञात प्रदेश" माना जाता था। बाहरी यात्रियों को, इस क्षेत्र में प्रवेश करने का विचार मन में आते ही किसी शेर की मांद में घुसने का अहसास घेर लेता था। इस इलाके में पांव धरने का खतरा इतना आतंककारी था कि सौ हथियारबंद सैनिकों का दस्ता बामनघाटी और सरायकिला के बीच के सीधे रास्ते को छोड़कर पूरब की ओर से, बीस मील का घुमावदार फासला तय करता था। उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक भी जब सिंहभूमि बाहरी लोगों के लिए अज्ञात प्रदेश बना हुआ था तब पोड़ाहाट के तत्कालीन राजा का यह दावा हास्यास्पद ही था कि वह समस्त सिंहभूमि का राजा था और लाड़का हो जाति उसकी बागी प्रजा थी।

इतिहास गवाह है कि पोड़ाहाट, सरायकिला और खरसावां के रजवाड़ों के निमंत्रण पर अंग्रेजों के इस इलाके में घुसपैठ करने के पहले यहां न कोई राजा था और न कोई प्रजा थी। लाड़का ग्रामीणों द्वारा चुना गया बुद्धिमान, ईमानदार और बहादुर व्यक्ति गांव का मुखिया होता था, जिसे मुण्डा कहते थे। मुण्डा का पद आनुवंशिक होते हुए भी ग्रामीणों की जनतांत्रिक शक्ति ही सर्वोपरि होती थी। अतः किसी मुण्डा के अयोग्य पाए जाने पर उसे पदच्युत करके गांव के किसी योग्य व्यक्ति को मुण्डा बनाया जा सकता था। इसी प्रकार, चार-पांच या उससे अधिक गांवों के ऊपर जो सरदार होता था वह मानकी कहलाता था। मानकी का पद भी मुण्डा के पद की तरह आनुवंशिक होता था लेकिन उसे भी अयोग्यता के आधार पर मुण्डा तथा उनके अधीन ग्रामीणों द्वारा अपदस्थ करके नए मानकी का चुनाव किया जा सकता था। आम ग्रामीण ही वस्तुतः राजा भी था और प्रजा भी। इस प्रकार, ग्राम स्वराज्य एक वास्तविकता थी।

s. चयन

लेकिन जिस प्रकार वन में स्वतंत्र और निर्भय चौकड़ियां भरते हिरण-शावकों को देख कर लालची भेड़ियों की लार टपकती है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति संतान लाड़का हो लोगों के स्वच्छंद और स्वाधीन जीवन को देखकर पोड़ाहाट के राजा और उसके भाई-बंद सरायकिला तथा खरसावां के रजवाड़े उन्हें अपने वश में करने के लिए बेहद बेचैन रहते थे।" पोड़ाहाट के राजा ने चुटियानागपुर के राजा दृपनाथ साही की बीस हजार सेना की सहायता से लाड़का हों लोगों को गुलाम बनाने के इरादे से उन पर पहला बड़ा हमला किया था।" इस लड़ाई में लाड़का लोगों ने एक जुट होकर पोड़ाहाट और चुटियानागपुर के राजा की सम्मिलित सेना के छक्के छुड़ा दिये थे और उन्हें सिंहभूमि की सीमा से बाहर खदेड़ दिया था। दूसरी बार सन् 1770 में चुटियानागपुर के तत्कालीन राजा जगन्नाथ साही ने लगभग उतनी ही बड़ी सेना लेकर लाड़का हो लोगों की स्वाधीनता को चुनौती दी थी और बुरी तरह मुंह की खाई थी। किसी प्रत्यक्षदर्शी ने मेजर रफसेज़ को एक ऊंचे और चौड़े मैदानी इलाके की ओर इशारा करते हुए बतलाया था कि उस स्थान पर मई महीने की चिलचिलाती दोपहरिया में लाड़का वीरों और जगन्नाथ साही की सेना के बीच मुठभेड़ हुई थी। भयंकर मारकाट हुई, लेकिन लाड़का बहादुरों की अंधड़-तूफान सी तेजी और रणकौशल को राजा की बड़ी सेना झेल नहीं पाई। राजा की आधी सेना मैदान में ही खेत रही। बाकी बची आधी सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। लाड़का लोगों ने दस मील तक उनका पीछा किया। राजा की बची खुची भागती हुई सेना का काम तमाम किया भयंकर गर्मी और प्यास ने। निकटवर्ती रजवाड़ों के इन हमलों ने जैसे जंगली मधुमक्खियों के छत्ते को छेड़ दिया था। अपनी आजादी पर आंच आती देख कर लाड़का हो लोग अपना आपा खो बैठे। उन्हें अपनी पारम्परिक शांतिप्रियता तथा "जियो और जीने दो" की युगों पुरानी नीति छोड़ देने के लिए विवश कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने चुटियानागपुर के अंतर्गत सोनपुर, बेलसिया तथा बसिया आदि क्षेत्रों पर बार-बार हमला करके उन्हें तबाह और बर्बाद कर दिया। देखते ही देखते गांगपुर, बोनाई, केयोंझर और मयूरभंज के निकटवर्ती क्षेत्रों के गांव निर्जन और वीरान हो गए। आखेट प्रेमी और नाच-गाने के रसिया लाड़का हो लोगों की सहज-सरल मानवीय प्रकृति को देखकर जिस किसी की आंखों में लालच समाया वही अपनी आंखें खो बैठा। लाड़का लोगों के विनाशकारी तांडव ने ऐसा आतंक मचाया था कि वर्षों तक किसी जमींदार अथवा रजवाड़े ने लाड़का प्रदेश की ओर देखने का साहस नहीं किया।

विदेशी घुसपैठ :

अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भारतीय इतिहास का एक ऐसा तूफानी दौर था जब भारत का चप्पा-चप्पा देशी-विदेशी आक्रमणकारियों की लूट-खसोट और अराजकता का शिकार हो गया था। राजे-महाराजे, शहंशाह और नवाबज़ादे विदेशी शक्ति और कूटनीतिक चालबाजियों के सामने तिनकों की तरह टूटते और बिखरते चले गए। सन् 1818 में तीसरे आंग्ल-मराठा युद्ध की निर्णायक समाप्ति तक ईस्ट इंडिया कम्पनी समस्त भारत में सर्वोपरि सत्ता के रूप में उभर कर सामने आ चुकी थी। यह बात अविश्वसनीय लग सकती है

लेकिन यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि पराधीनता के उस घटाटोप अंधकार में भी तथाकथित सभ्य लोगों की आबादी से दूर सिंहभूमि के सघन वन प्रदेश में स्वाधीन और घोर स्वाभिमानी लाड़का हो लोगों के गांवों में ग्राम स्वराज्य के अलाव रौशन थे। लेकिन जैसा कि आप जानते हैं-पड़ोसियों की सुख-शांति दुष्टों की नींद हराम कर देती है। पोड़ाहाट के रजवाड़ो ने पहली बार सन् 1767 में, दूसरी बार सन् 1809 मे और तीसरी बार सन् 1818 में ईस्ट इंडिया कम्पनी से दरख्वास्त की कि लाड़का हो लोगों को वश में करने के लिए उन्हें फौजी सहायता दी जाए। इसके बदले में वे ईस्ट इंडिया कम्पनी की अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो गए। कम्पनी सरकार ने सन् 1819 में अपने एक अधिकारी, असिसटेट पोलिटिकल एजेंट केप्टैन रूट्टेल को पोड़ाहाट के तत्कालीन राजा घनश्याम सिंह से बातचीत करने के लिए भेजा। इस बातचीत के परिणामस्वरूप 1 फरवरी, 1820 को कबूलियत पर दस्तखत करके राजा घनश्याम सिंह ने अपनी ही गुलामी के दस्तावेज पर अंगूठा लगा दिया। कबूलियत की शर्तों के अनुसार राजा ने कम्पनी की अधीनता स्वीकार की। बदले में कम्पनी ने राजा को उसकी तथाकथित बागी प्रजा, अर्थात लाड़का हो लोगों को राजा का आधिपत्य स्वीकार कराने में उसकी सहायता करने का वादा किया।

मार्च, सन् 1820 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने सैनिक अधिकारी मेज़र रफसेज़ को यह आदेश दिया कि वह लाड़का हो लोगों के खिलाफ फौजी कार्रवाई करके उन्हें पोड़ाहट की गुलामी स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दे। तोपखाना, घुड़सवार और पैदल सेना की पूरी बटालियन लेकर मेज़र रफसेज़ ने सरायकिला में अपना पहला पड़ाव डाला। लाड़का हो लोगों की आजाद तबीयत और अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए मरने-मारने की उनकी उत्कट प्रवृत्ति के बारे में मेज़र रफसेज़ ने काफी सुन रखा था। लेकिन इतनी जानकारी से उसे संतोष नहीं हुआ था। अतः उसने सरायकिला की राजसी मेहमानदारी में रुक कर लाड़का लोगों को पास से परखने की कोशिश की और सरायकिला के राजा से सलाह-मशविरा करके रफसेज़ ने लाड़का लोगों के दो प्रभावशाली सरदारों को बातचीत के लिए बुलवाया। मेज़र रफसेज़ ने दोनों मुण्डा सरदारों को लड़ाई-भिड़ाई और लूटमार आदि छोड़कर आज्ञाकारी प्रजा की तरह पोड़ाहाट राजा की गुलामी स्वीकार कर लेने के उपदेश दिए। मेज़र रफसेज़ ने सरायकिला से 18 मार्च, 1820 को लाड़का प्रदेश के आड्जोंडेया पीड़ के लिए कूच किया। 22 मार्च को अपने लश्कर के साथ उसने राजाबासा गांव में प्रवेश किया। लाड़का हो लोगों ने अब तक अपनी ओर से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी, सिवाय इसके कि पीने आदि के लिए गांव के बांध में जो भी पानी उपलब्ध था उसे लाड़का लोगों ने बांध काट कर समाप्त कर दिया था। राजाबासा गांव में अपने दो दिन के पड़ाव के दौरान ही मेज़र रफसेज़ को यह जानकारी मिली कि लाड़का लोगों की शक्ति और संघर्ष के केन्द्र गुमड़ा पीड़ तथा दक्षिण कोल्हान क्षेत्र थे। रफसेज़ ने गुमड़ा पीड़ में प्रवेश करके चाइबासा में अपना फौजी कैम्प लगाया ही था कि एक लाड़का टुकड़ी ने कैम्प पर अचानक हमला करके आनन-फानन लश्कर के एक आदमी को मार डाला और कइयों को घायल कर दिया। इस प्रकार लाड़का लोगों ने अपने क्षेत्र में विदेशियों की घुसपैठ के विरुद्ध अपने विरोध का इज़हार किया

था। कम्पनी की फौज इस अचानक हमले से बौखला उठी। मेज़र रफसेज़ ने लाड़का लोगों से निपटने के लिए अपने अधीनस्थ अधिकारी लेफ्टिनेंट मेइल्लार्ड के नेतृत्व में बंदूकधारी घुड़सवार फौज का एक दस्ता भेजा। अपने प्राणों की चिंता किए बगैर, मात्र अपने तीर-धनुष और फरसे लेकर लाड़का बहादुर आंधी की तरह कम्पनी की घुड़सवार फौज पर टूट पड़े थे। ज़ाहिर है कि बेहतर हथियारों से लैस घुड़सवार सेना को प्राचीन तीर-धनुष से पराजित करना संभव नहीं था। लेकिन जहां तक अपनी स्वाधीनता के लिए जान की बाजी लगा देने का प्रश्न था, लाड़का हो लोगों ने स्वाधीनता संग्राम के उस आरम्भिक चरण में ही वीरता और बलिदान की ऐसी मिसाल कायम कर दी थी जो आने वाली पीढ़ियों को सदियों तक प्रेरणा देती रहेगी। उस समय के शहीदों ने स्वाधीनता संघर्ष का जो इतिहास अपने लहू से लाड़का सन्तानों के मानस पटल पर लिखा था, वह उनके लिए धर्म बन गया, अर्थात जीवन का अर्थ है स्वाधीनता और गुलामी से बेहतर है मौत। अंग्रेज सरकार के भाड़े के देशी-विदेशी सिपाहियों के सामने न कोई सिद्धान्त था और न कोई आदर्श। वे अपने पेट या मात्र निजी स्वार्थ के लिए विदेशी लुटेरों के चाकर बने थे। बेहतर आधुनिक हथियारों के बल पर एक मुहिम जीत जाने के बाद भी उनकी आत्मा आजादी के दीवाने लाड़का वीरों से पराजित थी। मन ही मन में आहत, भयभीत और मानसिक पराजय से पागल लेफ्टिनेंट मेइल्लार्ड को सामने घास काटता हुआ एक हो दिखाई पड़ गया और मेइल्लार्ड ने उसकी हत्या कर दी। एक निर्दोष, निहत्थे व्यक्ति की इस कायरतापूर्ण नृशंस हत्या ने लाड़का लोगों के गुस्से में घृणा का तेल डाल दिया। मेइल्लार्ड की फौजी टुकड़ी पर हर दिशा से आक्रमण होने लगा। आदमी कोई दिखता नहीं था लेकिन जंगल के हर कोने से तीरों की वर्षा होने लगी। ऐसी स्थिति से हैरान-परेशान मेइल्लार्ड ने लाड़का लोगों के गांवों में आग लगवाना शुरू कर दिया और स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं बख्शा। लेकिन लाड़का लोगों ने मेइल्लार्ड की लौटती हुई फौज पर इधर-उधर से बार-बार हमला करके उसे भयंकर नुकसान पहुंचाया। मेज़र रफसेज़ की डाक और रसद की सप्लाई को लाड़का लोगों ने खतरे में डाल दिया। रफसेज़ को जब यह सूचना मिली की कुटियालोर नामक लाड़का गांव में सशस्त्र लड़ाके इकट्ठे हो रहे हैं तब उसने लेफ्टिनेंट मेइल्लार्ड को एक सौ साठ बंदूकधारी और घुड़सवार दस्ते के साथ वहां भेजा। मेइल्लार्ड ने वहां पहुंच कर जब देखा कि उसकी बंदूकधारी घुड़सवार सेना भी लाड़का तीरों और फरसों का मुकाबिला नहीं कर पा रही है तब उसने दोबारा वही कायरतापूर्ण नीति अपना कर लाड़का गांवों में आग लगवाना शुरू कर दिया। लाड़का लोगों के लिए ऐसे में अपने बाल-बच्चों, परिवार, अनाज और मवेशियों को बचाना मुश्किल हो गया। कोई चारा न देख गुमड़ा पीड़ के चौबीस गांवों के मुण्डा-मानकियों ने विवशता में समझौते का रुख अपनाया। तत्कालीन परिस्थितियों में उनके पास कोई और विकल्प क्या हो सकता था? लाड़का हो लोगों में यदि वीरगाथा गाने वाले चारण तथा भाटों की परम्परा रही होती अथवा उनकी कोई लिखित भाषा होती तो अपनी जाति, देश और स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले अपने अनाम पूर्वजों को लाड़का जाति के लोग "हाड़ाम को, दुडुम को" कह कर संबोधित न करते बल्कि उन्हें नाम से स्मरण करते और पूजते।

बहरहाल, यदि समस्त सिंहभूमि तथा कोल्हान की लाड़का जाति संगठित होती और अंग्रेज कम्पनी की फौज के, अपने क्षेत्र में प्रवेश करने के पहले ही उन पर ज़बरदस्त प्रहार करती तो इतिहास की धारा में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ होता। आड्जोंडेया पीड़ में अंग्रेजों के घुसने के पहले ही राजाबासा, गुमड़ा पीड़ तथा पूरब, पश्चिम और दक्षिण के बहादुर लाड़का वीरों को आती हुई अंग्रेजी सेना का मुकाबिला करने की योजना बना लेनी थी। लेकिन जहां लाड़का लोगों का प्रत्येक गांव अपने में एक स्वाधीन इकाई और जनतांत्रिक परिकल्पना का एक परम आदर्श हुआ करता था, वहीं एक केन्द्रीय संगठन तथा आपसी संपर्क सूत्र और तालमेल के अभाव में पुरानी पड़ चुकी वही आदर्श-व्यवस्था अभिशाप बन गई। अत्याधुनिक रूप से संगठित और अनुशासित अंग्रेज फौज की बंदूकों, तोपखानों और घुड़सवार सेना का मुकाबिला करने के लिए "एक हाथ में तीरकमान और दूजे में प्राण" लेकर मर मिटने को तैयार लाड़का शूरों की कमी तो नहीं थी, कमी थी तो केवल संगठन की। कोई ऐसा नेतृत्व नहीं था जो आजादी के उन परवानों का मार्गदर्शन करता, उन्हें बतलाता कि आओ शक्ति की विभिन्न इकाइयों को एकत्र करके एक महाशक्ति का रूप धारण करें और विदेशी आक्रमणकारियों को चीटियों की तरह मसल डालें।

इतिहास साक्षी है कि लाड़का वीरों ने जब-जब वीरता के साथ अपनी विवेक बुद्धि का प्रयोग करते हुए संगठित शक्ति के रूप में अंग्रेजी सेना को टक्कर दी थी, तब-तब अंग्रेजी सेना को मुंह की खानी पड़ी थी। अंग्रेज फौजी अधिकारी मेज़र रफसेज़ के लिए 6 अप्रैल, 1820 का दिन निश्चय ही सौभाग्यशाली था, अन्यथा लाड़का वीरों की भूमि से वह ताबूत की पालकी में वापस जाता। गामारेया में उस दिन लाड़का लोगों ने मेज़र रफसेज़ की सेना को चारों तरफ से घेर लिया था। विदेशी पलटन के अनेक सैनिक मारे गए और घायल हो गए। मुख्यालय से उनका सम्पर्क तोड़ दिया गया था और सैनिकों के लिए जो रसद था वह लुट चुका था। मेज़र रफसेज़ को तत्काल कुमुक मिलने की कोई संभावना नहीं थी और सामने केवल मृत्यु नाचती दिखाई पड़ रही थी लेकिन ऐसे में फिरंगियों के वफादार चाकर सरायकिला के राजा बाबू अजम्बर सिंह ने मौके से रफसेज़ को चोरी छिपे बचाकर संभलपुर पहुंचा दिया। मेज़र रफसेज़ की सेना को भारी नुकसान उठाना पड़ा और दक्षिणी कोल्हान के बहादुर लाड़का हो लोग अपनी आजादी कायम रखने में सफल रहे थे।

गामारेया के बाद पुकुरिया और चैनपुर की लड़ाइयों में भी लाड़का हो बहादुरों ने अंग्रेज फौज को बर्बाद कर दिया था। केवल तीर, फरसे, अदभुत साहस और छापामार रणकौशल के बल पर लाड़का लोगों ने विदेशी आक्रमणकारियों, बर्कंदाजियों और तोपखानों को शिकस्त दी थी। मिदनापुर स्थित कंपनी के एजेंट और आला अफसर घबरा उठे और उन्होंने यह तय किया कि इसके पहले कि सरकार की नामी-गिरामी, गोरी-काली पलटन का लाड़का लोगों के हाथ सफाया हो जाने की कहानी पूरे भारत में चर्चा का विषय बन जाए और कंपनी का वर्दीधारी सिपाही खेतों में कौए भगाने वाला फूस का पुतला साबित हो जाए, लाड़का हो नाम के इस बवंडर को हर कीमत पर काबू में लाना जरूरी है।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के गर्वनर जनरल ने लेफ्टिनेंट कर्नल रिचार्ड्स को आदेश दिया कि जितनी जल्दी हो सके स्वाधीनता संघर्ष की इस आग को बुझा दिया जाए। लाड़का [illegible]गों से निपटने के लिए एक बड़े फौजी चक्रव्यूह की रचना की गई। मिदनापुर, बांकुड़ा, रामगढ़, कटक और संभलपुर से अंग्रेजी पलटन, बंदूकधारी सेना, तोपखाना और घुड़सवार सैनिकों ने सिंहभूमि पर चारों दिशाओं से आक्रमण कर दिया। निकटवर्ती सभी रजवाड़ों ने अंग्रेजों का साथ दिया। लाड़का सरदारों के सामने अपनी जाति और बाल-बच्चों को सीधे मौत के मुंह में झोंकने के अलावा एकमात्र अन्य विकल्प यही था कि वे अंग्रेजों से समझौता करने के लिए राजी हो जाएं। सन् 1821 में लेफ्टिनेंट कर्नल रिचार्ड्स की फौज ने अत्यंत निर्ममता से लाड़का लोगों के स्वाधीनता-संग्राम का दमन किया लेकिन पराधीनता की बेड़ियों में पूरी तरह से जकड़े जाने के पहले ही लाड़का लोगों की स्वतंत्र प्रकृति फिर कसमसाने लगी। फरवरी, सन् 1830 में लाड़का लोगों ने पोड़ाहाट राजा के अधीन क्षेत्र जैंतगढ़ पर हमला किया। उनका लक्ष्य था राजा का दीवान रघुनाथ बेस्सी, जिसे लाड़का लोग अपने सरदार सुबन मुण्डा का हत्यारा समझते थे। जैंतगढ़ परगना के अंतर्गत पांच पिंगुवा गांवों के लाड़का लोगों ने मिलकर जैंतगढ़ पर हमला किया था। इन पांचों गांवों में कुंडियादोर और बोंडा के मुण्डा थे जुम्बल मुण्डा और उसका भाई नाकिया मुण्डा, जो सोबोन मुण्डा के पुत्र थे। इनका ही संबंधी था माटा मुण्डा। इन सब स्थानीय लाड़का सरदारों के नेतृत्व में लड़ी गई यह लड़ाई भी आपसी तालमेल और सुनियोजित योजनों के अभाव में सफल नहीं हो पाई। लेकिन यह ऐतिहासिक तथ्य है कि लाड़का हो लोगों में स्वाधीन रहने की उत्कट प्रवृत्ति को जीवित रखने में सुबन मुण्डा, जुम्बल मुण्डा, नाकिया मुण्डा, माटा मुण्डा आदि ने असाधारण बलिदान किया था। ब्रिटिश बंदूकों और रजवाड़ों के षड्यन्त्रों ने स्वाधीनता संघर्ष के शोलों को जबरन दबा तो दिया था लेकिन राख में दबे अंगारों की हवा का इंतजार था।

सन् 1831-32 में लाड़का लोगों में स्वाधीनता की ज्वाला फिर भड़क उठी। 1 दिसम्बर, 1831 को रांची जिला के सोनपुर परगना में पहला धमाका हुआ, जिसकी प्रतिध्वनि छोटानागपुर के पठार और पहाड़ियों को लांघती अवध की सीमाओं को भी हिला गई थी। पूरे छोटानागपुर में सिंहभूमि ही एक ऐसा क्षेत्र था जहां वस्तुतः किसी राजे-रजवाड़े की हुकूमत कभी नहीं रही। लेकिन अन्य क्षेत्रों में अपने को राजा अथवा जमींदार कहने वाले उच्चके और लुटेरे सरदारों की तूती बोलती थी। गरीब और सीधे-सादे मुण्डा, उरांव, खड़िया आदि आदिवासियों के शोषण पर ही जीवित रहने वाले धूर्त महाजनों का बोलबाला था। जो भी इने-गिने मुण्डा तथा चेरो राजा और सरदार थे उन्होंने अपने चाटुकार पुरोहितों के बहकावे में आकर अपने को क्षत्रिय कहना और समझना शुरू कर दिया और वे भी अपनी प्रजा की रक्षा करने की बजाय उनका शोषण करने वालों में शामिल हो गए। शोषण करने की भले ही कोई सीमा न होती हो लेकिन शोषण सहन कर पाने की कोई न कोई सीमा तो होती है। कभी न खत्म होने वाले निरंतर अत्याचार के परिणामस्वरूप लोगों के दुख और संताप के पीढ़ियों से इकट्ठा होते बारूद को एक छोटी सी चिनगारी की प्रतीक्षा थी। बंदगांव के अंतर्गत कटवा गांव के बिंदराय मानकी के इलाके से जमादार

खुदाबख्श, और बर्कन्दाजी-जगन्नाथ और मूसा ने मिलकर कोई औरत उठा ली थी। इस घटना ने वर्षों से दबी हुई ज्वालामुखी का मुंह खोल दिया और देखते ही देखते छोटानागपुर की हरी-भरी, शांत प्रतीत होने वाली उपत्यका आसमान छूती आग की लपटों और आतताइयों के आर्तनाद में डूब गई। पटना के तत्कालीन कमीशनर मास्टर द्वारा 17 जनवरी, 1833 को दी गई एक रिपोर्ट में उस विस्फोट का सजीव उल्लेख मिलता है। मौत, आगजनी और अराजकता की ऐसी भयंकर स्थिति इस शांत क्षेत्र में कभी नहीं देखी गई थी। सिंहभूमि के लाड़का हो लोगों ने तमाड़, सोनपुर और बंदगांव के अपने आदिवासी भाइयों का न केवल साथ दिया था बल्कि शोषण के खिलाफ इस अभूतपूर्व अभियान का नेतृत्व भी उन्होंने ही किया था। सिंहभूमि के सात लाड़का सरदारों में कुंडु पातोर के नाम का उल्लेख तत्कालीन बंगाल सरकार के वाइस प्रेसिडेंट के सेक्रेटरी मेज़र सदरलैण्ड ने भी अपनी रिपोर्ट में किया था।

शत्रु के विरुद्ध संघर्ष में अपनी जाति के लोगों से सहयोग की मांग करने के लिए संदेशवाहक के हाथ तीर भेजने की प्रथा लाड़का लोगों में प्रचलित थी। यदि तीर ज्यों का त्यों वापस कर दिया जाता था तो इसे सहयोग करने का संकेत अथवा स्वीकृति माना जाता था और यदि तीर तोड़ कर वापस किया जाता था तब इसे अस्वीकृति या सहयोग न करने का संकेत माना जाता था। सोनपुर से जिन दिशाओं में तीर भेजे गए थे, उन दिशाओं से सभी तीर सही सलामत वापस लौट आए और साथ ही उन दिशाओं में कोई सूबेदार, कोई बर्कन्दाजी, कोई ठेकेदार, न कोई महाजन बचा, न उनका कोई नाम लेवा रहा। ऐसे में जब देशी चोर-लुटेरों की गर्दनें नापी जा रही थीं तब सात समुंदर पार से आए अंग्रेज लुटेरों को अपना दम घुटने का अहसास होना स्वाभाविक था। देशी और विदेशी चोरों में मौसेरे भाइयों का रिश्ता था। अन्याय और शोषण के विरुद्ध छेड़े गए इस जनआन्दोलन को भी अपने स्वार्थ और हितों की रक्षा करने के लिए कंपनी सरकार ने अपनी दानवी शक्ति से कुचल दिया। लेकिन इस आन्दोलन ने भी सिंहभूमि की लाड़का जाति को संघर्ष की अग्नि में तपी-तपाई खरी संतानें दी थीं। बिन्दराय मानकी, सुई मुण्डा, बिन्दराय और सिंगराय बंधु, बहादुर, कुंडु पातोर, दासाय मुण्डा, कार्तिक सरदार आदि वीरों के नाम समुचित अभिलेखों के अभाव में अब केवल पूर्वजों की आत्मा के रूप में स्मरण किए जाते हैं।

बामनघाटी दुष्चक्र :

सन् 1821 से 1836 तक बामनघाटी के सुरबुराहकर और मयूरभंज के राजा के आपसी झगड़े और सरायकिला के कुंवर द्वारा सुरबुराहकर का तथा पोड़ाहाट के राजा द्वारा मयूरभंज के राजा का पक्ष लेने के कारण सिंहभूमि का सारा क्षेत्र घोर अशांति और अनिश्चितता का क्षेत्र बन गया। इन स्वार्थी राजाओं और जमींदारों के आपसी टकराव और षड्यंत्रों का सबसे अधिक बुरा और दूरगामी परिणाम इस क्षेत्र के निवासी लाड़का हो लोगों को भुगतना पड़ा। लाड़का हो लोगों में केन्द्रीय संगठन और आपसी संपर्क का

अभाव था ही, तिस पर उनके जुझारू तेवर ने उन्हें सहजता से राजाओं की आपसी लड़ाई और दांव-पेंच का मोहरा बना दिया था। एक जाति, एक धर्म, एक समाज, एक भाषा बोलने वाले और एक ही संस्कार में पले और ढले लाड़का लोग आपसी रिश्ते, स्नेह, सहानुभूति और भाईचारे को भूल कर केवल राजाओं की स्वार्थसिद्धि के लिए आपस में ही लड़ने-मरने लगे। इससे लाड़का लोगों के धन-जन की अपार हानि हुई लेकिन इसके अलावा समस्त लाड़का समाज पर बामनघाटी दुष्चक्र के जो दुष्प्रभाव पड़े उसका सही आकलन करना कठिन है। सबसे बड़ा और एक प्रकार से स्थायी नुकसान यह हुआ कि समाज अनेक टुकड़ों और विचारधाराओं में बंट गया और फिर कभी एक अर्थवान शक्तिशाली संगठन के रूप में एकजुट नहीं हो पाया।

अंततः, बामनघाटी की अत्यंत जटिल और उलझी हुई समस्या तथा स्वार्थी तत्वों की आपसी उठा पटक ने अंग्रेज सरकार के कान खड़े कर दिए। अंग्रेज सरकार को अपने राजनैतिक स्वार्थों तथा व्यापारिक हितों की रक्षा करने के लिए भी आपस में लड़ती हुई बिल्लियों के बीच बंदर की भूमिका निभानी थी और इस प्रकार वह ललमुंहा अंग्रेज बंदर बिल्लियों का सारा हलवा हड़प गया।

सिंहभूमि को पूरी तरह अपने कब्जे में करमे के इरादे से 18 नवम्बर, 1836 को अंग्रेज सैनिक अधिकारी केप्टेन विलकिनसन बांकुड़ा रेजीमेंट के साथ और सुप्रीम कमांडर के रूप में कर्नल रिचार्ड्स रामगढ़ बटालियन लेकर सरायकिला आ पहुंचे। सरायकिला, खरसावां, पोड़ाहाट तथा केरा के राजाओं ने धन-जन से अंग्रेज सरकार का साथ दिया। अंग्रेज सरकार ने फौजी अभियान आरंभ करने के पहले कूटनीतिक दांव लगाकर पहले से ही विभाजित लाड़का लोगों को प्रत्यक्षतः एक दूसरे के शत्रुओं के रूप में आमने-सामने खड़ा कर दिया। 3 दिसम्बर, 1836 को केप्टेन विलकिनसन बांकुड़ा रेजीमेंट तथा जमींदारी सेना लेकर थई पीड़ के सीमावर्ती गांव रूंजु पहुंच गया। उसी दिन केप्टेन कोरफील्ड ने 31वीं नेटिव इन्फ्रैंटी और सरायकिला के राजा के 300 सिपाही लेकर पासुबेड़ा, तुंइबाना, कोकचो और पोड़ाडीह पर भारी गोलाबारी के साथ हमला कर दिया। इन गांवों के बहादुर लाड़का मात्र अपने पारम्परिक हथियार तीर-धनुष और हथेली में अपने प्राण लिए अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए महाबुरु में एकत्र हुए। दूसरी ओर इलीगाड़ा, गितिलआदेर, रोलाडीह तथा गांजिया आदि गांवों के लोगों ने परिस्थितिवश समझौता कर लेना ठीक समझा। कोकचो के निकट दुराड़ा के लाड़का वीरों ने समझौता करने के बदले लड़ते हुए मर जाना बेहतर समझा। दुराड़ा, बिंजिबुरू तथा पुरूयां आदि गांवों में औरत-मर्द, बच्चे-बूढ़े आदि सबकी निर्मम हत्या करके और उनके घरों और खेत-खलिहानों में आग लगवा कर केप्टेन विलकिनसन ने ऐसा आतंक फैलाया कि उकुमाड्कम, टोंटो, खेड़ियाटांगोर और पुकुरिया के मुण्डा-मानकियों ने उसके समक्ष आत्म-समर्पण करने में ही खैर समझी। 8 दिसम्बर, 1836 को आंगारडिया पर अंग्रेज फौज ने अधिकार कर लिया। लेकिन आंगारडिया के लाड़का लोगों ने जीवन के अंतिम क्षण तक अंग्रेजों से टक्कर ली थी। अंग्रेज फौज की शक्ति और भयंकर रूप से विनाश करने वाले तोपों और बंदूकों की परवाह न करते

हुए थई पीड़ के अंतर्गत इपिलसिंगि, पांगा, विमिसाई, लुपुंगबासा, सिदमा, पापरगाड़ा, जांगीबुरु और कुंदुगुटु गांवों के लोगों ने लेफ्टिनेंट कोरफील्ड की फौज को सिंगासो पहाड़ के निकट इतनी ज़बरदस्त टक्कर दी थी कि सहायता के लिए केप्टेन लारेंस के अधीन रामगढ़ लाइट इनफैन्ट्री को बुलवाना पड़ा था। इपिलसिंगि और पांगा गांव को अंग्रेज फौज ने उजाड़ दिया था। लाड़का लोगों ने तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार करके यही तय किया कि अंग्रेज सरकार से सुलह सफाई करके ही बाल-बच्चों और खेत-खलिहानों को बचाया जा सकता है। लेकिन भरभरिया पीड़ के अंतर्गत बुटका तथा भागाबिला गांव के लाड़का वीर लगभग पन्द्रह दिनों तक अंग्रेज फौज से लड़ते रहे। केप्टेन विलकिनसन, केप्टेन कोरफील्ड और केप्टेन लारेंस की फौज ने धीरे-धीरे लालगढ़पीड़ के आंगारडिया, औलापीड़ के मजगांव, बरांडेयापीड़ के डुमुरिया, गामारेयापीड़, सबतंत्रीपीड़, जामदापीड़, रेंगड़ापीड़, कोटगढ़पीड़, नाथुआपीड़, सरंडापीड़ आदि पर अधिकार कर लिया और बाद में गुमड़ापीड़, बरकेला, चेरी, आड्जोंडेया, चैनपुर, गोपीनाथपुर, गोविन्दपुर तथा केलिनुआपीड़ के मानकी-मुण्डा लोगों को भी केप्टेन विलिकिन से समझौता करना पड़ा।

सन् 1836-37 में सिंहभूमि के लाड़का हो लोगों के खिलाफ कर्नल रिचार्ड्स द्वारा किया गया यह रक्तरंजित अभियान दो बराबर की शक्तियों की टक्कर नहीं थी। एक ओर थी कर्नल रिचार्ड्स और केप्टेन विलकिनसन जैसे समर्थ फौजी अधिकारियों के नेतृत्व में उस समय की अत्याधुनिक, अनुशासित और युद्ध के आधुनिकतम हथियारों से लैस सेना और दूसरी ओर थे अपने पारम्परिक तथा पुरातन तीर-धनुष से ही लड़ने वाले असंगठित और लगभग नेतृत्व विहीन बिखरे हुए लाड़का लोग। ऐसा नहीं था कि अपनी आजादी की रक्षा करने के लिए लाड़का हो लोगों में व्यक्तिगत कुर्बानी और शौर्य की कमी थी। लेकिन साधारणत: कहा जाए तो वे अपने आपसी झगड़ों और मतभेदों को भुला या मिटा नहीं पाए, जिसकी वजह से वे अपने सामान्य शत्रु अंग्रेजों और रजवाड़ों का संगठित और योजनाबद्ध तरीके से मुकाबिला नहीं कर पाए।

उपसंहार :

सन् 1837 के फरवरी महीने के मध्य तक अंग्रेजी फौज ने अपनी अपार पाशविक शक्ति के बल पर समस्त सिंहभूमि पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस भूभाग को अपने कब्जे में करने के लिए शक्तिशाली अंग्रेज सरकार को एड़ी-चोटी का जो जोर लगाना पड़ा था, उससे उसे मालूम हो गया था कि बल प्रयोग करके इस क्षेत्र को अधिकार में कर लेना एक बात थी लेकिन इस प्रदेश के अदम्य लोगों पर सामान्य रूप से और स्थायी तौर पर शासन कर पाना आसान बात नहीं होगी। जिस जाति के लोग अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए मात्र तीर-धनुष लेकर तोपों और बंदूकधारी बर्कन्दाजियों पर टूट पड़ने में ज़रा भी संकोच न करते हों उन्हें मार डालना तो आसान था लेकिन उन्हें जिन्दा रहते गुलामी की जंजीरों में बांध कर रखना मुश्किल था। अत: ब्रिटिश सरकार ने इस क्षेत्र पर शासन करने के लिए विशिष्ट प्रकार की नीति अपनाई और सिंहभूमि

के विभिन्न लाड़का बहुल क्षेत्रों (पीड़ों) को मिलाकर कोल्हान नामक प्रशासनिक इकाई का गठन किया तथा लाड़का जाति के गांवों और पीड़ों का प्रत्यक्ष प्रशासन लाड़का लोगों के पारम्परिक प्रशासन प्रणाली अर्थात् मानकी-मुण्डा प्रणाली के अधीन ही रहने दिया। पोड़ाहाट, सरायकिला तथा खरसावां को गर्वनर जनरल के पोलिटिकल एजेंट के अधीन कर दिया गया। धालभूम को मिदनापुर जिले का भाग घोषित किया गया। कोल्हान क्षेत्र के अन्तर्गत थईपीड़, भरभरियापीड़, लालगढ़पीड़, गोविन्दपुरपीड़, केलिनुआपीड़, रेंगड़ापीड़, सरंडापीड़ तथा पोड़ाहाट के चैनपुर क्षेत्र के पांच लाड़का गांव और राजाबासापीड़, ओवांचादरापीड़ या पुरलोंगपीड़, आअबुरू या सिदूसपीड़, सरायकिला का लोटापीड़ और खरसावां का एक पीड़ शामिल किया गया। संपूर्ण सिंहभूमि के साथ ही नवगठित कोल्हान को नॉन रेग्यूलेशन प्रोविंसेज के अधीन साउथ वेस्ट फ्रंटियर में शामिल किया गया। नॉन रेग्यूलेशन प्रोविंसेज के अधीन क्षेत्रों पर रेग्यूलेटिंग ऐक्ट, 1773 अथवा रेग्यूलेटिंग ऐक्ट, 1793 लागू नहीं किया गया (जबकि बिहार के बाकी भाग रेग्यूलेशन प्रोविंसेज के अंतर्गत थे)। कोल्हान के पृथक एवं विशेष प्रशासन के लिए सामान्यतः ऐसे फौजी अधिकारियों को तैनात किया गया जो स्थानीय भाषाओं की जानकारी रखते थे और जिनमें सिविल प्रशासन की रुचि और योग्यता थी। लाड़का लोगों पर प्रशासनिक नियंत्रण रखने तथा उन्हें तत्काल न्याय प्रदान करने के लिए साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी में गवर्नर जनरल के एजेंट केप्टेन विलकिनसन के सहायक अधिकारी के रूप में लेफ्टिनेंट टिकेल को पांच सौ रुपए प्रतिमाह के भत्ते पर नियुक्त किया गया। केप्टेन विलकिनसन ने अपने सहायक अधिकारी लेफ्टिनेंट टिकेल को कोल्हान के प्रशासन से संबंधित जो मार्गदर्शक निदेश दिए थे, वे न केवल व्यावहारिक थे बल्कि तत्कालीन परिस्थिति में सर्वथा उपयुक्त साबित हुए। केप्टेन विलकिनसन के निदेश इन शब्दों में निबद्ध थे : "आप अपने भोजन तथा मनोरंजन के अलावा बाकी सब समय अपने शासन के अधीन व्यक्तियों को उपलब्ध रहेंगे और आप इस बात का विशेष ध्यान रखेंगे कि आप उनसे अपने विभाग के किसी अधिकारी की मार्फत बात नहीं करेंगे ....", अर्थात आम लोगों से सीधा सम्पर्क रखना चाहिए।

सामान्यतः कोई भी प्रशासनतंत्र पुलिस के बिना चल नहीं सकता लेकिन कोल्हान में इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। कोल्हान में मानकी-मुण्डा प्रणाली की संस्था सदियों से चलती आई थी। अंग्रेज सरकार ने इस संस्था की उपयोगिता को समझा था और उसे बनाए रखा। वस्तुतः, मानकी-मुण्डा प्रणाली की यह जनतांत्रिक संस्था संपूर्ण ब्रिटिश शासनकाल में सफलतापूर्वक चलती रही। लेकिन देश के स्वतंत्र होने के बाद इस संस्था के इतिहास अथवा उपयोगिता का गंभीरता से अध्ययन किए बिना ही इसे, संभवतः, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अवशेष मात्र मानकर इसकी उपेक्षा की जाती रही, अर्थात न तो इसे समूल हटाया गया और न इसमें समय की मांग के अनुसार आवश्यक सुधार ही किए गए। नतीजा यह हुआ कि यह संस्था धीरे-धीरे कमजोर होती चली गई और स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा अधिरोपित पंचायती राज ने रही सही कसर पूरी कर दी। इससे एक दुखद अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ। पुलिस थानों की अभूतपूर्व संख्या बढ़ा कर मानकी-मुण्डा की हैसियत को गांव के पुलिस चौकीदार से भी बदतर और हीन भावना से ग्रस्त बना दिया गया।

पुलिस का एक सामान्यतम अधिकारी भी आज मानकी को "तुम" कह कर संबोधित करने में संकोच नहीं करता। ऐसा नहीं है कि मानकी-मुण्डा संस्था के पतन में केवल व्यवस्था ही दोषी थी। किसी भी सामाजिक संस्था में यदि समयानुसार सुधार नहीं किए जाते तो उस संस्था का विघटन स्वतः आरंभ हो जाता है। मानकी-मुण्डा संस्था के लगभग पूर्णतः आनुवांशिक बन जाने, आर्थिक दृष्टि से अनाकर्षक होने तथा स्वयं लाड़का हो लोगों द्वारा इस संस्था के प्रति उदासीन होने के कारण आज यह संस्था अर्थहीन हो चली है। यदि इस संस्था को सही दिशा और थोड़ा सा प्रोत्साहन मिलता तो नेतृत्वहीन कोल्हान के गांवों की ऐसी दुर्दशा न होती। आज कोल्हान के लगभग हर क्षेत्र में ऐसी अराजकता व्याप्त है, जो स्वाधीनता के बाद कभी नहीं देखी गई थी। कानून और व्यवस्था की स्थिति चिंताजनक सीमा को पार कर चुकी है। विकास के तमाम मार्ग अवरुद्ध पड़े हैं। दिन प्रति दिन बढ़ती हुई सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं ने स्थानीय लोगों के मन में निराशा, दिशाहीनता और कुंठा का ज़हर भर दिया है। जहां के अरण्य, शाल वन कभी लाड़का जाति के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पद्धति के अभिन्न आधार थे वहां उन देव तुल्य वनों को जिस तीव्रता और निमर्मता से नष्ट किया जा रहा है वह निश्चित रूप से आत्मघाती है। अनेक स्कूलों और कालेजों के खुल जाने के बावजूद शिक्षा के स्तर में भारी गिरावट हुई है, जिसके परिणामस्वरूप पूर्णतः शिक्षित-प्रशिक्षित नौजवनों की तुलना में ऐसे अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित युवकों की विध्वंशकारी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जो आपराधिक तथा समाजविरोधी गतिविधियों की ओर तेजी से आकर्षित हो रही है। सरकार की सद्भावी नीतियों के अभाव में कोल्हान की जनसंख्या का एक बड़ा भाग दो मुट्ठी चावल की तलाश में अपनी धरती और सामाजिक परिवेश से सदा के लिए निर्वासित हुआ जा रहा है। चूंकि जनसंख्या का यह वर्ग पढ़ा-लिखा नहीं है, अतः परदेश की प्रतिकूल और बहुत हद तक विद्वेषी तथा शोषणकारी परिस्थितियों से वह अपनी तथा अपनी पहचान की रक्षा कतई नहीं कर पाएगा और अंततः वह जातिसंहार की एक परिष्कृत षड्यंत्र का निवाला बनता चला जाएगा। ईंट के भट्ठों, नगरों और महानगरों की गंदी गलियों और झोपड़पट्टियों में आमरण बंधुवा मजदूरों का नारकीय जीवनयापन करते-करते लाड़का जाति की ये संतानें हमेशा के लिए लुप्त हो जाएंगी। अकूत खनिज संपदाओं, प्राकृतिक साधनों और विशाल कल कारखानों से युक्त सिंहभूमि के स्थानीय लोगों को मामूली मजदूरी की तलाश में दर-दर भटकने की बात देश के भाग्यविधाताओं और नीति निर्माताओं की आपराधिक उदासीनता का या फिर उनकी किसी निर्मम और घृणित साजिश का संकेत करती है।

इसमें संदेह नहीं कि लाड़का हो जाति की जनसंख्या के एक नगण्य वर्ग ने प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए देश की मुख्यधारा के साथ चल सकने में अपने को समर्थ बना लिया है। तथापि, यह एक दुखद बात है कि यह पढ़ा लिखा वर्ग अपने सामाजिक दायित्व को पहचान नहीं पाया है। यही वह वर्ग है जो अपने वृहत समाज का नेतृत्व करके उसे सही दिशा प्रदान कर सकता है लेकिन संभवतः स्वयं दिग्भ्रमित होने अथवा अपने संकुचित दृष्टिकोण, सुविधाभोगी जीवन और निजी स्वार्थों में अत्यधिक आलिप्त और व्यस्त होने के कारण वह अपने दायित्व के प्रति कोई प्रतिबद्धता [illegible] नहीं कर पा

रहा है। किसी भी समाज का पढ़ा-लिखा प्रबुद्ध वर्ग अपने समाज की आंख, कान तथा बुद्धि का स्थान रखता है। अतः इस वर्ग को यह सामान्य सी बात समझनी चाहिए कि संपूर्ण सामाजिक शरीर के जीवन, स्वास्थ्य और विकास में ही उनका अपना जीवन, उनका अपना स्वास्थ्य, उनका अपना विकास, उनकी अपनी पहचान, उनकी अपनी गरिमा और आत्मसम्मान निहित और निर्भर है।

बहरहाल, अब आवश्यकता इस बात की है कि लाड़का हो जाति अपने इतिहास से सबक ले और समाज के वृहत्तर कल्याण के लिए अपने छोटे-मोटे आपसी मतभेदों को भुला दे। इस जाति का, अपने अस्तित्व को सम्मानपूर्वक जीवित रखने के लिए एक शक्तिशाली और अनुशासित इकाई के रूप में संगठित होना अपरिहार्य है ताकि वह अपने समाज तथा देश के नवनिर्माण और विकास में एक अर्थवान भूमिका निभा सके, अन्यथा, इस विलक्षण जाति के विलुप्त हो जाने के लक्षण बहुत स्पष्ट हैं।

– o –